राजस्थान विश्वविद्यालय भारतीय दर्शन अध्ययन माला का द्वाविंश पुष्प

भारतीय दर्शन चयनिका

राजेन्द्र प्रसाद शर्मा
समीर कुमार

दर्शन विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय
जयपुर

राजस्थान विश्वविद्यालय भारतीय दर्शन अध्ययन माला–22

प्रधान सम्पादक : **डॉ. राजेन्द्र प्रसाद शर्मा**
समन्वयक, उच्च अध्ययन केन्द्र, दर्शन विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के उच्च अध्ययन केन्द्र के
अन्तर्गत दर्शन विभाग के द्वारा 2018 में प्रकाशित ग्रन्थ।

ISBN : 81-86027-33-5

मूल्य : 200/– **रुपये**

विशाल कम्प्यूटर्स, जयपुर द्वारा सङ्गणक टङ्कित
टैक्नोक्रेट प्रिन्टर्स प्रा. लि., जयपुर द्वारा मुद्रित।

University of Rajasthan Studies in Indian Philosophy - 22

Bhāratīya Darśana Cayanikā

Rajendra Prasad Sharma
Samir Kumar

Department of Philophy
University of Rajasthan
Jaipur

University of Rajasthan Studies in Indian Philosophy - 22

General Editor : **Dr. Rajendra Prasad Sharma**
Co-ordinator, Centre of Advanced Study
Department of Philosophy,
University of Rajasthan, Jaipur

Published in 2018 by the Department of Philosophy, University of Rajasthan, Jaipur-302004 (Rajasthan) India with financial assistance from the UGC under its CAS budget.

© All rights reserved.

ISBN : 81-86027-33-5

Price : Rs. 200/-

Computer typed by : Vishal Computers, Jaipur
Printed by : Technocrat Printers Pvt. Ltd., Jaipur.

अनुक्रमणिका

	सम्पादकीय	राजेन्द्रप्रसाद शर्मा	
	समर्पण	राजेन्द्रप्रसाद शर्मा	
	आद्य सम्पादक का निवेदन	प्रो. राजेन्द्रस्वरूप भटनागर	
	भारतीय दर्शन चयनिका (मूल ग्रन्थ)		**1–62**
1.	जैन दर्शन — सामान्य परिचय एवं चयनिका	डॉ. राजकुमारी जैन	1–9
2.	जैन दर्शन चयनिका	डॉ. राजवीर सिंह शेखावत	10–11
3.	बौद्ध दर्शन — सामान्य परिचय एवं चयनिका	डॉ. भगवती राव	12–18
4.	सांख्य-योग-दर्शन — सामान्य परिचय एवं चयनिका	प्रो. शिवनारायण जोशी	19–31
5.	न्याय-वैशेषिक-दर्शन — सामान्य परिचय एवं चयनिका	श्रीमती बेनु प्रभाकर	32–38
6.	वैशेषिक-दर्शन — चयनिका	पं. खड्गनाथ मिश्र	39–42
7.	पूर्व-मीमांसा — सामान्य परिचय एवं चयनिका	डॉ. कन्हैयालाल शर्मा	43–51
8.	अद्वैत-दर्शन — सामान्य परिचय	डॉ. प्रकाशवती शर्मा	52–54
9.	अद्वैत-दर्शन — चयनिका	डॉ. रमेशचन्द्र शर्मा	55–58
10.	विशिष्टाद्वैत-दर्शन — सामान्य परिचय एवं चयनिका	डॉ. रमेशचन्द्र शर्मा	59–62

भारतीय दर्शन चयनिका (परिवर्द्धित भाग) **63–114**

11.	चार्वाक दर्शन — सामान्य परिचय	समीर कुमार	63–69
12.	गीता का नैतिक दर्शन — सामान्य परिचय	डॉ. राजेन्द्र प्रसाद शर्मा	70–76
13.	मीमांसा दर्शन — सामान्य परिचय	डॉ. राजेन्द्र प्रसाद शर्मा एवं समीर कुमार	77–85
14.	वेदान्त शिक्षा दर्शन — सामान्य परिचय	डॉ. राजेन्द्र प्रसाद शर्मा	86–94
15.	भारतीय दर्शन में आत्मा — सामान्य परिचय	डॉ. सुशिम दुबे	95–104
16.	भारतीय दर्शन में मोक्ष — सामान्य परिचय	डॉ. सुशिम दुबे	105–114
	दर्शन विभागीय पुस्तक प्रकाशन सूची		115–118

भारतीय दर्शन में आत्मा : सामान्य परिचय

डॉ. सुशिम दुबे

उपनिषत् : आत्मा का स्वरूप

अवधारणात्मक बिन्दुः

- *'आत्मन्' – परिचय*
- *आत्मा या ब्रह्म के प्रत्यय का उद्भव*
- *उपनिषदों में आत्मा विषयक चर्चा –*
- *उपनिषदों से प्रमुख उद्धरण (Main references from Upanishads)*

'आत्मन्' – परिचय

'आत्मन्' या आत्मा पद भारतीय दर्शन के महत्त्वपूर्ण प्रत्ययों(concepts) में से एक है। उपनिषदों के मूलभूत विषय–वस्तु के रूप में यह आता है। जहाँ इससे अभिप्राय व्यक्ति में अन्तर्निहित उस मूलभूत सत् से किया गया है जो कि शाश्वत तत्त्व है तथा मृत्यु के पश्चात् भी जिसका विनाश नहीं होता।

आत्मा या ब्रह्म के प्रत्यय का उद्भव

उपनिषदों में इस प्रश्न पर विचार किया गया है कि – जगत् का मूल तत्त्व क्या है/कौन है? इस प्रश्न का उत्तर में उपनिषदों में ब्रह्म' से दिया गया है। अर्थात् ब्रह्म ही वह मूलभूत तत्त्व है जिससे यह समस्त जगत् का उद्भव हुआ है –"बृहति बृंहति बृह्म"अर्थात् बढ़ा हुआ है, बढ़ता है इसलिये ब्रह्म कहलाता है। यदि समस्त भूत जगत् ब्रह्म की ही सृष्टि है तब तार्किक रूप से हममें भी जो मूल तत्त्व है वह भी ब्रह्म ही होगा। इसीलिये उपनिषदों में ब्रह्म एवं आत्मा को एक बतलाया गया है। इसी की अनुभूति को आत्मानुभूति या ब्रह्मानुभूति भी कहा गया है।

'आत्मा' का प्रथम वर्णन

ऋग्वेद के दसवें मण्डल में ''नासदीय सूक्त''में सृष्टि के उद्भव का वर्णन आता है। यहाँ कहा गया है कि प्रारम्भ में सृष्टि में कुछ भी नहीं था सत् एवं असत्, अमरत्व एवं, मृत्यु भी नहीं थी। जगत् शून्य के समान था, तब उस समय केवल एक अस्तित्व था जो कि श्वास रहित परन्तु अपने से श्वासित था । यहीं पर उपनिषदीय एक तत्त्व तथा आत्मा की अवधारणा का प्रारम्भिक स्वरूप एवं

वर्णन प्राप्त होता है। नासदीय सूक्त को इस वर्णन के परिप्रेक्ष्य से जीवन के प्रथम प्रश्वास का प्रथम लिखित वर्णन भी कहा जा सकता है।

'आत्मा' शब्द के अभिप्राय

आत्मा शब्द से सर्वप्रथम अभिप्राय 'श्वास-प्रश्वास'(breathing) तथा 'मूलभूत-जीवन-तत्त्व' किया गया प्रतीत होता है। इसका ही आगे बहुआयामी विस्तार हुआ जैसे—

यदाप्नोति यदादत्ति यदत्ति यच्चास्य सन्ततो भवम् ....
तस्माद् इति आत्मा कीर्त्यते।। (सन्धिविच्छेदः कृतः)

— शांकरभाष्य

अर्थात्, जो प्राप्त करता है(देह), जो भोजन करता है, जो कि सतत (शाश्वत तत्त्व के रूप में) रहता है, इससे वह आत्मा कहलाता है।

उपनिषदों में आत्मा विषयक चर्चा

तैत्तरीय उपनिषत् में आत्मा या चैतन्य के पाँच कोशों की चर्चा की गयी प्रथम अन्नमय कोश, मनोमयकोश, प्राणमयकोश, विज्ञानमयकोश तथा आनन्दमय कोश। आनन्दमय कोश से ही आत्मा के स्वरूप की अभिव्यक्ति की गयी है।

माण्डूक्य उपनिषत् में चेतना के चार स्तरों का वर्णन प्राप्त होता है—

1. जाग्रत्
2. स्वप्न
3. सुषुप्ति
4. तुरीय

यह तुरीय अवस्था को ही आत्मा के स्वरूप की अवस्था कहा गया है—

"शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं स आत्मा सविज्ञेयः"।।

— माण्डूक्योपनिषत्, 7

छान्दोग्य उपनिषत् इसी सन्दर्भ में इन्द्र एवं विरोचन दोनों प्रजापति के पास जाकर आत्मा(ब्रह्म) के स्वरूप के विषय में प्रश्न करते हैं।यहाँ पर प्रणव या ॐ को इसका प्रतीक या वाचक कहा गया है।

बृहदारण्यक उपनिषत् में याज्ञवल्क्य एवं मैत्रेयी के संवाद में भी आत्मा के सम्यक् ज्ञान मनन-चिन्तन एवं निदिध्यासन की बात की गयी है तथा इससे ही परमतत्त्व के ज्ञान को भी सम्भव बतलाया गया है -

"आत्मा वा अरे श्रोतव्या मन्तव्या निदिध्यासतव्या...."

Basic Quotations :

कठोपनिषत्

येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्येऽस्तीत्येकेनायमस्तीतिचैके।
एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाहं वराणामेष वरस्तृतीयः ॥20॥
देवैरत्रापि विचिकित्सितं पुरा न हि सुवे ज्ञेयमणुरेष धर्म :।
अन्यं वरं नचिकेतो वृणीष्व मा मोपरोत्सीरति मासृजैनम् ॥21॥

केनोपनिषत्

ॐकेनेषितं पतति प्रेषितं मनः केन प्राणः प्रथमः प्रैतियुक्तः।
केनेषितां वाचमिमां वदन्ति चक्षुः श्रोत्रं क उ देवो युनक्ति।।1।।
श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्वाचो ह वाचं स उ प्राणस्यप्राणः।
चक्षुश्चक्षुरितिमुच्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति।।2।।
न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीमो
यथैतदनुशिष्यादन्यदेवतद्विदितादथो अविदितादधि।
इति शुश्रुम पूर्वेषां येनस्तद्व्याचचक्षिरे।।3।।
यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते।
तदेव ब्रह्मत्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते।।4।।

प्रश्नोपनिषत्

तृतीयःप्रश्नः
अथ हैनं कौसल्यश्चाश्वलायनः पप्रच्छ।। भगवन्कुत एष प्राणो जायते
कथमायात्यस्मिञ्छरीर आत्मानं वा प्रविभज्य कथं प्रतिष्ठतेकेनोत्क्रमते
कथं बाह्यमभिधत्ते कथमध्यात्ममिति।।1।।

माण्डूक्योपनिषत्

अदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारं
प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं स आत्मा सविज्ञेयः।।7।।
सोऽयमात्माऽध्यक्षरमोङ्कारोऽधिमात्रं पादा मात्रा मात्राश्च पादअकार
उकारो मकार इति ।।8।।
अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्यः प्रपञ्चोपशमः शिवोऽद्वैत एवमोङ्कार
आत्मैवसंविशत्यात्मनात्मानं य एवं वेद य एवं वेद।।12।।

तैत्तरीयोपनिषत्

यतो वाचो निवर्तन्ते।। अप्राप्य मनसा सह।। आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्।। न
बिभेति कदाचनेति।। तस्यैष एव शारीर आत्मा।। यः पूर्वस्य।। तस्माद्वा
एतस्मान्मनोमयात्।। अनयोऽन्तर आत्मा विज्ञानमयः।। तेनैष पूर्णः।। स

वा एष पुरुषविध एव।। तस्य पुरुषविधताम्।। अन्वयं पुरुषविधः।। तस्य श्रद्धैव शिरः ।। ऋतं दक्षिणः पक्षः।। सत्यमुत्तरः पक्षः ।। योग आत्मा।। महः पुच्छं प्रतिष्ठा।। तदप्येष श्लोको भवति।। इति चतुर्थोऽनुवाकः।।4।।

आत्मा का स्वरूप – अद्वैत दर्शन

अद्वैत से तात्पर्य है– अ+द्वैतअर्थात् द्वैत का अभाव। वेदान्त दर्शन के विभिन्न सिद्धान्तों में अद्वैत दर्शन महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। अद्वैत वेदान्त विचारधारा के विवरण पूर्व में भी मिलते हैं तथापि आचार्य शङ्कर(788–820 ई.) को इस विचारधारा का संस्थापक माना जाता है। उन्होंने उपनिषदों, ब्रह्मसूत्र तथा गीता की अपनी व्याख्याओं में परमत्त्व का स्वरूप में समस्त द्वैधता(एक से अधिक होना) को नकारते हुए अद्वैत(अर्थात् परम तत्त्व का एकत्व स्थापित किया। यही अद्वैत मत कहलाता है।

वेदान्त की इस विचारधारा के अनुसार अद्वैत ही परमसत् (ultimate reality) है। यदि हम परमतत्त्व का विश्लेषण करें तो अन्ततोगत्वा कोई भी वैयक्तिक तत्त्व नहीं है केवल काल क्रम से ही उनमें किसी स्थान एवं समय की अपेक्षा से वैयक्तिकता दिखायी देती है। जैसे घड़े के अन्दर का रिक्त स्थान एवं घड़े के बाहर कमरे का रिक्त स्थान एवं कमरे के बाहर का भी रिक्त स्थान – सभी रिक्त स्थान तात्त्विक दृष्टि से एक हैं, उसी प्रकार सभी तत्त्व अन्ततः परमतत्त्व(ब्रह्म) की प्रतीति हैं। यह परमसत् सभी कालों या समयों में एक समान रहता है, यही परमसत् की परिभाषा भी है –

"**त्रिकालाबाधित्वं सत्**" — *शांकरभाष्य*

सत्ता की दृष्टि से इसे ही ब्रह्म कहा गया है—'**बृहति बृंहति ब्रह्म**' अर्थात्, बढ़ा हुआ है या बढ़ता है इसीलिये ब्रह्म कहलाता है। इसी की अभिव्यक्ति समस्त चराचर सृष्टि है। आत्मा भी वास्तव में परमसत् का ही (वैयक्तिक विवेचन की दृष्टि से) स्वरूप है, उससे भिन्न नहीं है। आत्म के इस परम स्वरूप की अनुभूति न होना आत्मा की जीव रूपी अवस्था है, इसे ही बन्धनावस्था कहा गया है। अतः अपने वास्तविक स्वरूप अर्थात् आत्मस्वरूप की अनुभूति ही मोक्ष कहा गया है।

अद्वैत सिद्धान्त की यही मन्तव्य अधोलिखित श्लोक से अभिव्यक्त होता है –

"**ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः**"

"ब्रह्म सत्य है एवं जगत् मिथ्या है, जीव ब्रह्म ही है ब्रह्म से इतर या भिन्न नहीं है"।

आचार्य शंकर

अद्वैत वेदान्त का सहित्य भारतीय दार्शनिक साहित्य परम्परा में अत्यन्त समृद्ध एवं विशाल है। इसके संस्थापक आचार्य शंकर ने ही हिन्दू धर्म की संरक्षणार्थ चार पीठों की स्थापना की जो भारतवर्ष के पूर्व, पश्चिम, उत्तर तथा दक्षिण में पुरी, द्वारका, बद्रीनाथ तथा

शृंगेरी के नाम से चारों धाम के रूप में जानी जाती हैं। पश्चम पीठ काश्ची पीठ है।

आत्मा का स्वरूप – विशिष्टाद्वैत दर्शन

परिचय

आचार्य रामानुज (1017–1137 ई.) वेदान्त परम्परा के भक्तिमार्गी दर्शन परम्परा के प्रथम दार्शनिक कहे जा सकते हैं। रामानुजाचार्य ने सातवीं–दसवीं शताब्दी के रहस्यवादी एवं भक्ति मार्गी अलवार सन्तों से भक्ति के दर्शन को तथा दक्षिण के पाञ्चरात्र परम्परा को अपने विचार की पृष्ठभूमि बनाया। रामानुज जगत् एवं समस्त जागतिक ज्ञान को सत्य मानते हैं तथा समान्य दैनिक जीवन की दिनचर्या को आध्यात्मिक जीवन से सर्वथा पृथक् या भिन्न भी नहीं बतलाते हैं।

मूल ग्रन्थ– ब्रह्मसूत्र पर भाष्य – *'श्रीभाष्य'* एवं *'वेदार्थ संग्रह', 'गीताभाष्य'* आदि।

रामानुजाचार्य के दर्शन में सत्ता या परमसत् के सम्बन्ध में तीन स्तर विवेचित हैं— ब्रह्म (ईश्वर), चित्(आत्म), तथा अचित्(प्रकृति)।

वस्तुतः ये चित् अर्थात् आत्म तत्त्व तथा अचित् अर्थात् प्रकृति तत्त्व ब्रह्म या ईश्वर से पृथक् नहीं है अपितु ये विशिष्ट रूप से ब्रह्म का ही स्वरूप है एवं ब्रह्म या ईश्वर पर ही आधारित हैं यही रामानुजाचार्य का विशिष्टाद्वैत का सिद्धान्त है। इसे हम शरीर एवं आत्मा के उदाहरण से समझ सकते हैं, जैसे एक शरीर एवं आत्मा पृथक् नहीं हैं तथा आत्म के उद्देश्य की पूर्ति के लिये शरीर कार्य करता है उसी प्रकार ब्रह्म या ईश्वर से पृथक् चित् एवं अचित् तत्त्व का कोई अस्तित्व नहीं हैं वे ब्रह्म या ईश्वर का शरीर हैं तथा ब्रह्म या ईश्वर उनकी आत्मा सदृश्य हैं। रामानुज का यह सिद्धान्त 'जैव–ऐक्य' का सिद्धान्त प्रस्तुत करता है।

यदि आत्म तत्त्व ईश्वर पर ही आश्रित है तो आत्मा का उद्देश्य रामानुजाचार्य के अनुसार ईश्वर की सेवा या उनके लिये ही सब कुछ करना (serving to the God) हो जाता है। ईश्वर से आत्मा में जो कुछ भी भिन्नता है वह ही शेष (ईश्वरत्व की प्राप्ति के लिये) है। समस्त दृश्य जगत् ईश्वर की अभिव्यक्ति है। यह सत् है। असत् या माया नहीं है। इस आधार पर रामानुजाचार्य, अपने पूर्ववर्ती आचार्य शङ्कर के विचारों का खण्डन करते हैं तथा ब्रह्म या परमसत् या ईश्वर के चित् (आत्म तत्त्व) तथा अचित् (अचेतन तत्त्व या प्रकृति) से विशिष्ट स्वरूप को निरूपित करते हैं, यही रामानुजाचार्य का विशिष्टाद्वैत वाद (अर्थात् चित् अचित् विशिष्ट ब्रह्म) है।

आत्मा का स्वरूप –द्वैत दर्शन

द्वैतवाद परम सत् या मूलभूत सत् को प्रकारात्मक रूप से द्विधा मानता है – ईश्वर एवं वैयक्तिक आत्मायें । यह भारतीय वेदान्त दर्शन में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। द्वैतवाद दर्शन के संस्थापक आचार्य मध्व थे जो कि आनन्दतीर्थ (ई. 1199–1278)

नाम से भी जाने जाते हैं। इनके दर्शन के आधार ग्रन्थ उपनिषदों, ब्रह्मसूत्र तथा गीता पर लिखे भाष्य हैं।

द्वैतवाद के अन्तर्गत मध्वाचार्य ने परमसत् के तीन प्रकार के तात्त्विक स्तर बतलायें हैं – ईश्वर, आत्मा एवं प्रकृति। हालाँकि ईश्वर के अस्तित्व को तर्क आदि प्रमाणों के द्वारा सिद्ध किया जा सकता है तथापि आप्तग्रन्थ ही उसके स्वरूप का सही–सही विवेचन करने में समर्थ हैं। ईश्वर वस्तुतः सभी प्रकार की पूर्णताओं के धाम हैं और उनकी देह अलौकिक है जिसका स्वरूप सच्चिदानन्द (सत् चित् और आनन्द) है।

आत्मा का स्वरूप

मध्वाचार्य के द्वैतवाद के अनुसार जीवों की संख्या के अनुसार ही आत्मा की भी संख्या है। वे अणु अनुपात की हैं। आत्मा स्वरूपतः ईश्वर के समान ही हैं। तथा अपनी मुक्ति एवं कर्म में उन पर आश्रित भी हैं। इस प्रकार अणु अनुपात की आत्मा विभु (limitless) हो यह ईश्वर की कृपा पर ही आश्रित है साथ ही उसके पूर्व जन्मकृत कर्म भी इसमें महत्त्व रखते हैं।

मध्वाचार्य के द्वैतवाद के अन्तर्गत पांच प्रकार के अन्तरों की चर्चा की है– ईश्वर एवं आत्मा में अन्तर, आत्मा तथा आत्मा में अन्तर, आत्मा तथा भौतिक पदार्थ में अन्तर, ईश्वर तथा भौतिक पदार्थ में अन्तर एवं भौतिक पदार्थ तथा भौतिक पदार्थ में अन्तर। सभी धामों के निधान ईश्वर अपने आन्तरिक चारित्रिक गुणों से ही जगत् को उत्पन्न करने में समर्थ हैं।

मध्वाचार्य के द्वैत दर्शन के अनुसार बन्धन एवं मोक्ष दोनों ही समान रूप से सत्य हैं ये किसी प्रकार के आभास या माया नहीं है। बन्धन एवं मोक्ष दोनों होते हैं। मोक्ष का साधन—केवल भक्ति ही है परन्तु इसमें भी मुक्ति के लिये ईश्वर की कृपा (grace) आवश्यक है। इसीप्रकार धार्मिक ग्रन्थ में उल्लखित ईश्वर प्राप्ति के कर्तव्य जब बिना किसी स्वार्थ एवं आगामी लक्ष्य की प्राप्ति का ध्येय रख कर किये जाते हैं तो इनसे चित्त की शुद्धि होती है और तब चित्त ईश्वर की कृपा को ग्रहण करने में समर्थ होता है यही मुक्ति या मोक्ष की ओर ले जाता है।

आत्मा का स्वरूप – शैव दर्शन

शैव दर्शन हिन्दू मान्यता के तीन प्रमुख प्रचलित वर्तमान आधारों शैव, वैष्णव तथा शाक्त में से एक है। शैव दर्शन में शिव से आशय है कि 'परम पवित्र एक (अद्वैत)'। शैव दर्शन के अन्तर्गत भी क्रिया–विधि, मान्यता–सिद्धान्त आदि के आधार पर विभिन्न प्रचलित स्वरूप मिलते हैं । उनमें से तीन प्रमुख हैं—

1. शैव–सिद्धान्त (दार्शनिक एवं सैद्धान्तिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण)
2. लिङ्गायत (सामाजिक रूप से भिन्नता के आधार पर—भिन्न समाज ही होता है)
3. दशनामी संन्यासी (संन्यास धारण किये हुये)

ऐतिहासिक रूप से शैव दर्शन का उद्भव विद्वानों द्वारा आर्यों के पूर्व भी बतलाया जाता है जिसका कि समन्वय कालक्रम से वैदिक देवता रुद्र(प्रलयंकारी) के गुणों के साथ

समन्वित किया गया है। *श्वेताश्वतर उपनिषत्* में शिव को सर्वकालिक शाश्वत कहा गया है। शैव दर्शन के अन्तर्गत तीन मुख्य तत्त्व माने गये हैं –

1. पति–शिव (परम ईश्वर)
2. पशु–जीव (बन्धनावस्था में जीव)
3. पाश–बन्धन (जो कि जीव को जगत् की सीमित अवस्था में बाँध कर रखता है।)

जीव को यहाँ पर बन्धनावस्था में सीमित स्वभाव का बतलाया गया है जहाँ पर उसके ज्ञान एवं शक्ति अल्प होते है तथा अनादि अविद्या से वह बन्धनावस्था में रहता है। अविद्या या अज्ञान ही उसका पाश है। शिव की परम कृपा से इस बन्धन का समाप्त करना ही 'शिवत्व' को प्राप्त करना है। इसे ही मोक्ष या मुक्ति कहा गया है। शैव दर्शन में मोक्षावस्था प्राप्ति के लिये चार प्रकार की साधनाओं अपरिहार्यतायें बतलायी गयीं हैं –

1. चर्या – पूजन आदि कर्म,
2. क्रिया– आराधना करना तथा आश्रित होना,
3. योग– ध्यान, और
4. ज्ञान– शिव के स्वरूप का वास्तविक ज्ञान।

इन्हीं से क्रमागत रूप से शिव के स्वरूप की अनूभूति तथा शिवत्व की प्राप्ति सम्भव बतलायी गयी है।

आत्मा का स्वरूप –चार्वाक दर्शन

चार्वाक भारतीय दर्शनों में भौतिकवादी विचारधारा का प्रतिनिधित्व करता है। चार्वाक (चारु + वाक् = सुन्दर वचन) इसे 'लोकायत दर्शन' भी कहते हैं। चार्वाक दर्शन अति प्राचीन है वेदों में भी इसकी मान्यताओं के सन्दर्भ मिलते हैं। चार्वाक विचारधारा इस जगत् एवं इस जीवन पर केन्द्रित है यह इस जगत् के परे तथा इस जीवन के पश्चात् किसी भी अन्य जगत् या जीवन के अस्तित्व को अस्वीकार करता है। चार्वाक दर्शन मुख्य रूप से चली आ रहीं तीन वैदिक मान्यताओं को अस्वीकार कर देता है—

1. इस जगत् के परे किसी अन्य जगत् (स्वर्ग एवं नरक) का कोई अस्तित्व नहीं है,
2. वेदों की प्रमाणिकता नहीं है,
3. किसी भी अमर आत्मा का अस्तित्व नहीं है।

इस प्रकार समस्त जगत् का उद्भव या सृष्टि पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि इन चार महाभूतों से हुई है। आकाश को भी ये नहीं मानते क्योंकि इसका प्रत्यक्ष नहीं होता है। इस प्रकार समस्त देह (body) चार भूतों से बनी हुई है तथा जब चार भूतों का संयोग होता है तो स्वयंमेव चेतना का संचार हो जाता है जैसे पान, सुपारी, कत्थे आदि के संयोग से लाल रंग अपने आप उत्पन्न हो जाता है। इसी प्रकार भौतिक वस्तुओं में चेतना का संचार अपने आप हो जाता है। और मृत्यु के साथ यह चेतना भी समाप्त हो जाती है। इस प्रकार मृत्यु के पश्चात कोई भी तत्त्व शेष नहीं रहता है। इसीलिये चार्वाक यह कहता है कि जब तक जियो

सुखपूर्वक जियो क्योंकि एक बार देह के समाप्त हो जाने के पश्चात पुनः देह का आगमन सम्भव नहीं है—

यावज्जीवेत् सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः।। — *सर्वदर्शनसंग्रह*

इस प्रकार कहा जा सकता है कि चार्वाक दर्शन में देहात्मवाद(देह ही आत्मा है) का सिद्धान्त समर्थित किया गया है एवं मृत्यु को ही मोक्ष माना है—**मरणम् एव अपवर्गः।**

चार्वाक दर्शन

चार्वाक मान्यताओं की स्थूलता तथा केवल भौतिकवादी विचारों पर आश्रित रहने के कारण तथा वेदों की आलोचना के कारण अन्य भारतीय दर्शनों के द्वारा प्रबल आलोचना हुई है। ऐतिहासिक रूप से चार्वाक मान्यताऐं छठवीं शताब्दी के आसपास लगभग समाप्त होती दिखायी देती हैं। चार्वाक दर्शन का कोई भी मूलग्रन्थ पहले प्राप्त नहीं था। अन्य ग्रन्थों में इसका वर्णन आलोचना के रूप में आया है वहीं पर हमें इस दर्शन के सिद्धान्तों के बारे में जानकारी मिलती है। अब 'तत्त्वोप्लवसिंह – जयराशिकृत' ग्रन्थ उपलब्ध होता है।

आत्मा का स्वरूप – बौद्ध दर्शन

Buddha = "awakened one", one who have Realization, बुद्ध – 'बोधि' संप्राप्त

मूल–साहित्य—*त्रिपिटक (विनयपिटक, सुत्तपिटक, अभिधम्मपिटक)* जो पालि भाषा में रचित है।

बौद्ध मान्यता के अनुसार व्यक्ति या समष्टि दोनों का ही अस्तित्व एक निरन्तर एवं क्षणिक रूप में है और यह अपने अग्रिम क्षण में परिवर्तित या विलीन हो जाता है। बौद्धों का यह सिद्धान्त 'क्षणिकवाद' कहलाता है।

बौद्ध दर्शन में सभी प्रकार के अस्तित्व के तीन मूलभूत लक्षण बतलाये गये हैं—

'त्रिविधलक्षणात्मकं सत्ता'।

समस्त अस्तित्व 'त्रिलक्षण' है

अनात्म अर्थात् आत्मा का अस्तित्व नहीं है।
अनित्य अर्थात् सभी पदार्थ परिणामी एवं विनाशशील है।
दुःख अर्थात् सभी पदार्थ अन्ततोगत्वा दुःखस्वरूप है।

महात्मा बुद्ध की उक्ति है—

"सब्बे भव्वा दुक्खा अनिच्चा विपरिणामधम्मा"।

— *अंगुत्तर निकाय,* पालि साहित्य

अर्थात् सम्पूर्ण संसार अनित्य दुःखस्वरूप एवं विपरीत परिणामों से युक्त है।

इस प्रकार बौद्ध दर्शन अजर-अमर-शाश्वत आत्मा के अस्तित्व को अस्वीकार कर देता है। और आत्मा को पांच स्कन्धों(अवयवों) के संघात(समूह) के रूप में मानता है। यह सिद्धान्त अनात्मवाद के नाम से जाना जाता है।

बौद्ध दर्शन एवं प्रसार

बौद्ध दर्शन का प्रसार मध्य एशिया से लेकर दक्षिण एशिया पर्यन्त तथा चीन, जापान, कोरिया आदि देशों में काफी पहले से हुआ है वहाँ की संस्कृति एवं समाज निर्माण में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। आज भी यह वहाँ के मुख्य धर्मों में समाहित है। बीसवीं सदी के आसपास इसका प्रसार पश्चिम के देशों में भी हुआ है।

बौद्धों का अनात्मवाद पाँच स्कन्धों के समवाय को बताता है। जिससे तात्पर्य है कि मानव अस्तित्व के पाँच घटक हैं-

(1) रूप (corporeality or physical forms)
(2) वेदना (feelings or sensations)
(3) संज्ञा (ideations)
(4) संस्कार (mental formations or dispositions)
(5) विज्ञान (consciousness)

इस प्रकार समस्त मानव अस्तित्व इन उपर्युक्त पांच घटकों का संघात या समूहात्मक स्वरूप है, इसका कोई एक अवयवी केवल आत्मा नहीं है। अस्तित्व का किसी समय कोई न कोई एक रूप, कोई न कोई एक संज्ञा(नाम), कोई न कोई संस्कार, चेतना आदि होती है। इस प्रकार अस्तित्व में संस्कारों, रूप, वेदना, संज्ञा, विज्ञान(चेतना) का प्रवाहमात्र है। यही बौद्ध दर्शन का अनात्मवाद है।

आत्मा का स्वरूप – जैन दर्शन

जैन-विचारधारा- मुख्य रूप से चौबीस तीर्थङ्करों (ऋषभदेव-प्रथम तीर्थंकर तथा महावीर स्वामी (अन्तिम तीर्थंकर) की शिक्षाओं पर आधारित है।

जैन दर्शन का साहित्य मुख्य रूप से प्राकृत तथा संस्कृत भाषा में है। *तत्त्वार्थसूत्र, प्रवचनसार, समयसार, द्रव्यसंग्रहगाथा* आदि प्रमुख ग्रन्थ हैं ।

जैन शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत की 'जिन्' धातु से हुई है जिससे अभिप्राय है जीतना, जीत लेना। इसप्रकार जिन्होंने अपनी इन्द्रियों को, राग-द्वेष आदि संवेगों को जीत लिया, और इसलिये वे जिनेन्द्रिय कहलाये। तथा जो इन जिनेन्द्रिय(जैन मुनियों) के वचन पर आस्था रखते हैं उनके मार्ग पर अनुगामी होते हैं वे जैन हैं।

जीव Or Soul—जैन दर्शन के अनुसार अस्तित्व या सत्ता के दो प्रमुख प्रकार हैं—जीव एवं अजीव। जीव वे हैं जिनमें चेतना है—

"**चेतनालक्षणो जीवः**" — *द्रव्यसंग्रह*

तथा अजीव तत्व वह है जिसमें चेतना या गति का अभाव हैं। अजीव का आगे दो विभाग हैं – अचेतन जड़ एवं अचेतन अजड़।

चेतना के अतिरिक्त जीव के अन्य मूलभूत लक्षण सुख, ऊर्जामयता तथा प्रकृति से ऊर्ध्वगामी होना कहे गये हैं। जीव के भी दो विभाग हैं – बद्ध जीव एवं मुक्त जीव।मुक्त जीवों में उपर्युक्त गुण अनन्त संख्या मात्रा में तथा बद्ध जीवों में सीमित मात्रा में बतालाये गये हैं। जीव संख्या में अनन्त बतलाये गये हैं। जीव के परिमाण या आकार के सम्बन्ध में जैन दर्शन 'अस्तिकायवाद' को मानता है। अर्थात् **(अस्ति–है, 'काय–शरीर', जैसा)** जिस परिमाण का शरीर है उसी परिमाण का भी जीव भी है। जीव के अन्य दो विभाग– स्थिर एवं गतिशील बतलाये गये हैं। इनमें भी उनमें इन्द्रियों की संख्या के आधार पर एक–इन्द्रियजीव, दो–इन्द्रिय जीव से लेकर पंचेन्द्रिय जीव (मनुष्य) विवेचन किया गया है।

"**वनस्पत्यन्तानामेकम्।। कृमिपिपीलिकाभ्रमरमनुष्यादीनामेकैक वृद्धानि**"।।

—तत्त्वार्थ सूत्र 2/22-23

जैन दर्शन या जैन धर्म मुख्य रूप से सभी जीवों के प्रति 'अहिंसा' भावना पर आधारित है। इसका सांस्कृंतिक रूप से विधिवत् उद्भव तथा विकास 7वीं से 5वीं शताब्दी ईसापूर्व दिखायी देता है। इसने अपने विकास के साथ–साथ भारत के मूर्तिकला, गणित, ज्योतिष, नक्षत्र विज्ञान आदि तथा दर्शन तथा तर्क शास्त्र के विकास में महत्वपूर्ण योगदान किया है।

कार्यक्रम अधिकारी
भारतीय दार्शनिक अनुसन्धान परिषद्
36 तुगलकाबाद इन्स्टीट्यूशनल एरिया
नई दिल्ली–110062
दूरभाष : 9818420102

❑

भारतीय दर्शन में मोक्ष : सामान्य परिचय

डॉ. सुशिम दुबे

मोक्ष का स्वरूप – वेद

वेदों में मोक्ष का स्वरूप

वेद– वेद शब्द की निष्पत्ति संस्कृत की 'विद्' धातु से हुई है जिससे तात्पर्य है – 'जानना'। वेद मन्त्रों की संहिता के रूप में है। वेद मन्त्र किसी की वैयक्तिक रचना नहीं हैं। ऋषियों ने तपस्या या अनुभूति के गहन स्तर पर जिस तत्त्व का साक्षात्कार किया, वही वेदमन्त्र हैं। इसलिये इन्हे अपौरुषेय भी कहा जाता है। संहितायें चार हैं –

ऋग्वेद—सर्वाधिक प्राचीन ऋग्वेद माना जाता है। इसमें 1028 सूक्त हैं। इसे संसार के पुरातन साहित्य होने का गौरव भी प्राप्त है।

यजुर्वेद—यज्ञ के विधानों के मन्त्र।

सामवेद—मन्त्रों का गायन-पद्धति के साथ संकलन।

अथर्ववेद– उपर्युक्त तीनों वेदों के मन्त्रों के साथ विशिष्ट तान्त्रिक आदि गूढ़ विषयों पर मन्त्र।

वैदिक मन्त्र प्रायः किसी न किसी देवताओं (देव – ज्ञान या प्रकाश को देने वाला) को सम्बोधित किये गये हैं। वेदों में प्रमुख देव इन्द्र, अग्नि, वायु आदि देवता हैं, जिन्हें प्रायः प्राकृतिक शक्तियों के व्यक्तित्व करण के रूप में देख गया है।

वेदों में मोक्ष का स्वरूप – मोक्ष शब्द वेदों में प्रयुक्त नहीं हुआ है। आर्यों ने वैदिक प्रार्थनाओं में इसी जीवन की समस्त सुख-सुविधाओं की कामना करते हुए शतायु होने की प्रार्थना की है—

शरदः शतम् जीवेम्।

मोक्ष'

मोक्ष शब्द 'मुच्' धातु से बना हुआ है जिससे अभिप्राय है 'छूटना', 'छुटकारा पाना', भारतीय दार्शनिक परम्परा के अन्तर्गत मोक्ष को उस स्थिति के रूप में माना गया है, जहाँ पर व्यक्ति के कर्मफल एवं पुनर्जन्म के बन्धनों का नाश हो जाता है। इसे अवस्था के स्वरूप पर विभिन्न दर्शनों में विभिन्न व्याख्यायें की गयी हैं। पश्चिमी धर्मों की तुलना में मोक्ष को इसी जीवन में प्राप्य भी बतलाया गया है। तथा

वैदिक धर्म की तुलना में मोक्ष को स्वार्गिक सुख की अवस्था से श्रेयस्कर एवं माना गया है। मोक्ष अवस्था के सूचक भारतीय दर्शनों में विविध पद प्रयुक्त किये गये हैं – कैवल्य, निर्वाण, मोक्ष, अपवर्ग, परम पुरुषार्थ, आत्यान्तिक लक्ष्य आदि।

वैदिक मन्त्र प्रार्थनाएँ भी हैं साथ में सबल, सरस एवं प्रफुल्लित जीवन के आदर्श तथा प्रेरणाएँ भी हैं। मन्त्र में देवताओं से अनेक पशु सम्पदा, धन-धान्य से परिपूर्णता, सौभाग्यवृद्धि, उत्तमस्वास्थ्य, आरोग्य, शत्रुओं का नाश, अनेकों पुत्र एवं समस्त जागतिक सुखों से परिपूर्ण सौ वर्षों तक निरोगी जीवन की कामना की गयी है। इन कामनाओं की पूर्ति के लिये विभिन्न यज्ञों का विधान किया गया है। त्रुटि रहित रूप में यज्ञों का सम्पादन अकाट्य फल को उत्पन्न करने वाला कहा गया है। यहाँ तक कि स्वर्ग की प्राप्ति भी यज्ञ से सम्भव बतलाई गयी है—

स्वर्ग कामो यजेत।

अर्थात्, स्वर्ग को चाहने वाला यज्ञ करे। इस प्रकार यज्ञ-याग आदि कर्म उत्तम पुण्यों के प्रदाता बतलाए गये हैं जिससे जीवन समृद्ध तथा सुखमय तथा पावन-पुण्य मय होता बतलाया गया है। जीवन में उत्तम पुण्यों को करने पर इन्हीं सुखों के भोग के रूप में स्वर्ग के जीवन की कामना की गयी है। परन्तु स्वर्ग का जीवन केवल तभी तक सम्भव माना गया जब तक उत्तम पुण्यों का भोग पूरा नहीं हो जाता है, इसके पश्चात पुनः जगत् में आगमन की बात की गयी है तथा इसके विपरीत दुष्कर्मों या पाप के फल के रूप में नरक की अवधारणा है।

स्वर्ग एवं नरक

वैदिक धर्म की व्याखा जटिलता को समाहित करती है। यद्यपि यहाँ पर स्वर्ग एवं नरक की अवधारणा है, तथापि स्वर्ग पद अत्यन्त कम बार ही वेदों में प्रयुक्त दिखाई देता है। *ऋग्वेद* के अन्तिम भाग में ही यह प्रयुक्त दिखायी देता है। साथ ही नरक पद ऋग्वेद में प्रयुक्त नहीं है। *अथर्ववेद* में इसका प्रयोग दिखायी देता है

दो महत्त्वपूर्ण अवधारणाएँ –

ऋत—ऋत से तात्पर्य है, प्राकृतिक नियम, वैश्विक नियम, नैतिक नियम या सत्य व्यवहार का नियम। जो सत्य या सही है वह जगत् की नैतिक व्यवस्था के रूप में है। इस मूलभूत प्रत्यय से ही आगे विश्व के एकत्व की व्याख्या आपादित हुई।